P: ISSN NO.: 2394-0344
E: ISSN NO.: 2455-0817

Remarking
Vol-II * Issue-VI* November - 2015

अभिराजीय कथा–संसार में सांस्कृतिक पर्यावरण

अशोक कंवर शेखावत
व्याख्याता,
संस्कृत विभाग,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
झालावाड़, राजस्थान

सारांश

त्रिवेणी कवि अभिराजराजेन्द्रमिश्र की लेखनी यद्यपि साहित्य की समस्त विधाओं में सिद्धहस्त है, तथापि उनकी कथाओं में कोई अद्भुत ही चमत्कार है। सीधी साधी, सहज सरल एवं रोचक कथाओं में प्राचीन एवं नवीन जीवन मूल्यों का सुन्दर सामञ्जस्य है। अप्रासंगिक को छोड़ते हुए भी उन्होंने सांस्कृतिक मर्यादा का कहीं अतिक्रमण नहीं किया है। पुरातन गौरवशाली सांस्कृतिक परम्पराओं को तर्क की कसौटी पर कसकर सही मायनों में उन्होंने भारतीय सांस्कृतिक पर्यावरण को संरक्षित एवं सवर्धित करने का पावन प्रयास किया है।

मुख्य शब्द : संस्कृति, सांस्कृतिक, लौकिक, पारलौकिक, जिजीविषा, मानवनिसर्गः, प्राक्तनजन्म, विपर्ययैः, अधमर्णतोत्तमर्णता, चञ्चा, पुनर्नवा, शतपर्विका।

प्रस्तावना

सांस्कृतिक अर्थात् संस्कृति से संबंधित। 'संस्कृति' शब्द सम् उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु से निष्पन्न है। सम् अर्थात् सम्यक् 'कृति' अर्थात् क्रियाकलाप। इस व्युत्पत्ति के अनुसार 'संस्कृति' शब्द उन समस्त आचार–विचारों एवं क्रियाकलापों के समूह का प्रतिनिधित्व करता है, जिनको सभ्य एवं श्रेष्ठ मनुष्य आदर्श एवं अनुकरणीय व्यवहार के रुप में अपनाते रहे हैं।

श्री राजगोपालाचारी के शब्दों में ''किसी भी जाति अथवा राष्ट्र के शिष्ट पुरुषों में विचार, वाणी एवं क्रिया का जो व्याप्त रहना है, उसी का नाम संस्कृति है।''[1]

रामधारी सिंह दिनकर संस्कृति को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि ''संस्कृति एक ऐसा गुण है, जो हमारे जीवन में छाया हुआ है। यह एक आत्मिक गुण है, जो मनुष्य स्वभाव में उसी प्रकार व्याप्त है, जिस प्रकार फूलों में सुगन्ध और दूध में मक्खन। इसका निर्माण एक या दो दिन में नहीं होता, युगयुगान्तर में होता है।''[2]

संस्कृति मानव के जीवन दर्शन की संवाहिका है, राष्ट्र की जीवनधारा का प्राणस्त्रोत है।

भारतीय संस्कृति मनुष्य के लौकिक एवं पारलौकिक कल्याण की बात करती है। यह आत्मा, मन, बुद्धि एवं कर्म के विकास का पथ प्रशस्त करती है। सनातन काल से चलो आ रही भारतीय संस्कृति कर्मप्रधान संस्कृति है। इसमें पुरुषार्थ चतुष्ट्य, वर्णाश्रम व्यवस्था, पंचमहायज्ञ, ऋणत्रय, पुनर्जन्म एवं मोक्ष, आध्यात्मिकता, समन्वयशीलता, त्याग, तपस्या, तपोवन रूप तीन तकार, ज्ञान, कर्म, भक्ति मार्ग से मोक्ष, भाग्य एवं पुरुषार्थ, परोपकार, पाप पुण्य की परिकल्पना एवं विश्वबंधुत्व आदि विलक्षण तत्त्व विराजमान हैं।

अभिराजराजेन्द्र मिश्र भारतीय संस्कृत साहित्य सरिता के साथ ही भारतीय संस्कृति के भी संवाहक एवं संरक्षक हैं। प्रो. पुष्पा दीक्षित उनके कथा साहित्य के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए कहती हैं– ''उनकी कथाओं का उद्देश्य प्रायशः वर्तमानकालिक सामाजिक समस्याओं का विस्फोरण करते हुए उनका समाधान करना है, किन्तु यहाँ यह द्रष्टव्य है कि वे भगवान् मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के समान स्वप्न में भी मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करते, जो भारतीयता के प्रतिकूल हो। अतः आधुनिक युग के अनुरुप अपना वैचारिक विकास करते हुए, भारतीय संस्कृति की सर्वात्मना रक्षा ही उनका मुख्य उद्देश्य है और नारी इसका केन्द्र बिन्दु है।''[3]

एक बहुत बड़ी टिप्पणी जो वे उनके बारे में कहती हैं– ''जो भारतीय ग्रामों के परिवेश में पले–बढ़े हैं, सर्वशास्त्र विचक्षण है, शास्त्र मर्यादा, काव्य मर्यादा और समाज मर्यादा को सर्वथा सर्वात्मना जानते हैं, अतः समुद्र के समान वे त्रिकाल में भी मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करते हैं। असहाय, विधवा, परित्यक्ता और व्यभिचारिता नारियाँ भी सौभाग्यमण्डित गार्हस्थ्य में प्रतिष्ठित होकर रहे, यह संदेश देकर वे भारतीय गार्हस्थ्य धर्म की विश्वजनीनता का

उद्घोष कर रहे हैं। अतः आधुनिकता का पोषण करते हुए भी ये मर्यादा का ही पोषण कर रहे हैं।''[4]

कविवर की कथाओं की विषय वस्तु उनकी भारतीय संस्कृति की पोषक विचारधारा को प्रमाणित करती है। सांस्कृतिक संक्रमण के इस दौर में अभिराजराजेन्द्र मिश्र प्रासंगिक पुरातन सांस्कृतिक जीवनमूल्यों को संरक्षित करते हुए समसामयिक संदर्भों के साथ उनका समायोजन करते हुए नवीन जीवन मूल्यों को भी आत्मसात करते हैं। पुरातन एवं अधुनातन सांस्कृतिक जीवन मूल्यों का आदर्श संतुलन है, कविवर का कथा साहित्य।

आध्यात्मिकता, सर्वोच्च शक्तिमान परमेश्वर में आस्था एवं श्रद्धा भारतीय संस्कृति का सर्वाधिक शक्तिशाली पक्ष है। आस्था मनुष्य की निराशा अथवा हताशा को दूर कर जीवन में नवाशा का संचार करती है। जीवन को नई दिशा, नई गति, नया उल्लास, नया उत्साह, नई स्फूर्ति देती है। कविवर की कथाओं में यह आस्था व विश्वास सर्वत्र दिखाई देता है। उनकी कथाओं के पात्र परमेश्वर से अपने मन की व्यथा साझा करते हैं। जिजीविषा में तपती की माँ आजीविका के बदले शीलभङ्ग होने पर परमात्मा को उलाहना देते हुए कहती है– ''अर्न्तयामिन्! दृष्टम्मया भवन्न्यायः। उत्थितान् पातयसि! पापान् प्रवर्धयसि! साधून् सर्वथा खलीकरोषि।''[5]

'सुखशयितप्रच्छिका' में नायक शुभदा की करुण कथा को सुनकर सोचता है– ''हन्त भोः करुणावरुणालय! अनन्तोऽपरिमेयश्च ते महिमा।''[6]

'राङ्गडा' कथा में कवि स्वयं सर्वशक्तिमान मा पराम्बा से कहते हैं '' हा मातः। कयं ते दुःस्थिति? या त्वं भारते विन्ध्यकामाख्यामैहरार्बुदाचलशिखरेषु काञ्चीमदुरामहावतीप्रभृतिसुरालयेषु महता सम्भारेण त्रिसन्ध्यं समर्च्यसे प्रभूतभक्तवृन्दैः सा त्वमत्र बालीद्वीपीये कुतरीग्रामे राङ्गडाभूता श्मसानभूमौ पशुपति विरहिता कथमेकाकिनी तिष्ठसि?''[7]

भारतीय संस्कृति में शक्ति पूजा की परम्परा रही है। यह हमारी वो अन्तर्निहित शक्ति है, जो सृजनधर्मा एवं क्रोधित होने पर विनाशकारी स्वरुप में परिकल्पित है। इसकी परिकल्पना को अभिव्यक्त करते हुए कविवर कहते हैं– ''राजराजेश्वरि! भ्रूभङ्गमात्रेणैव त्रिलोकं विदधती विनाशयन्ती च या त्वं हरिहर विरञ्चिसेव्यमाना सर्वोपरि राराज्यसे।''[8]

पुनर्जन्म एवं मोक्ष भारतीय संस्कृति की एक अन्य विशेषता है। कविवर इसका समर्थन करते हुए प्रतीत होते हैं। ब्रह्मर्षि वशिष्ठ के द्वारा अभिशप्त वसुओं को आत्मोद्धार के लिए गंगा के गर्भ से जन्म लेना पड़ता है। ''ब्रह्मर्षि वशिष्ठाभिशप्तैरष्टवसुभिः स्वोद्धारार्थं जन्मदात्रीत्वभारं निर्वोढुं भृशमथ्यर्थिताऽहम्।''[9]

मनुष्य का स्वभाव एवं संस्कार पूर्वजन्म के संस्कारों से अनुप्राणित होते हैं, इसी बात का समर्थन करते हुए कवि कहते हैं– ''पुर्वजन्माजित संस्कारानुप्राणितो भवति मानवनिसर्गः।''[10]

'कुक्की' कथा में कुक्की (मार्जारी) के नायिकावत् व्यवहार को देखकर कवि सोचते हैं कि संभवत अतीत के जन्मों की प्रणय भावना को पशुयोनि में उत्पन्ना यह मार्जारी कर रही है। वे कहते हैं– ''विचित्र एव भवति कर्मविपाकः। सकृदवियुक्तो जीवोऽपरस्मिन् जीवने कुत्र, कदा किं वा भूत्वा जनि लभत इति को वेद?''[11]

पूर्वजन्म के संस्कार ही थोड़े प्रयत्नों अथवा उत्प्रेरक पाकर मुखरित हो उठते हैं। 'एकचक्रः' कथा में वे कहते हैं– ''वल्लकीतन्त्रकल्पा मे प्राक्तनजन्मार्जितसंस्काराः पितृचरणप्रयत्नस्पशैरेव मुखरीभूताः।''[12]

भारतीय संस्कृति की परिकल्पना है कि जीवन में प्रत्येक कृत कर्म का फल सद्य अथवा कालान्तर में अथवा दूसरे जन्म में अपरिहार्य रुप से मिलता ही है। सौभाग्य के रुप में अच्छे कार्यों का अच्छा फल तथा बुरे कार्यों का दुर्भाग्य के रुप में बुरा फल। इस कर्मफल के सिद्धान्त से ही जुड़ा हुआ दर्शन है– पुनर्जन्म, भाग्य एवं मोक्ष। इसी पर प्रकाश डालते हुए कविवर कहते हैं–''तच्चिन्तितं कर्मविपाकरहस्यं को नु जानाति? परन्तु निश्चित मिदं यत्प्रत्येकं घटनायाः सूत्रं तेनैव नियन्त्रितम्। इदमपि सुनिश्चितं यन्न किमपि निष्प्रयोजनं घटते। केन दुःखेन कि सुखमुत्पद्यते, कस्य वा दुःखेन कस्याऽन्यस्य सुखं विधीयते इति परमेश्वरः प्रागेव जानाति। घटिते सति लोकोऽपि जानीते। विचित्रं विस्मयावहञ्च नियतिजनितं घटनाचक्रम्।''[13]

मधुप एवं विमला के परिस्थिति जन्य वियोग एवं विमला के अन्यत्र विवाह के बारे में वे टिप्पणी करते हैं ''बलीयसी भवितव्यता।''[14]

'इक्षुगन्धा' की नायिका बिट्टी का विवाह अल्पयोग्य वर से होने पर नायक के मुख से कहलवाते हैं– ''ईदृशैरेव विपर्ययैः सृष्टिः प्रवर्तते। सर्वेऽपि प्राणिनः पूर्वजन्मार्जितान्येव पापपुण्यानि भुञ्जन्ति। सुखस्य दुःखस्य वा न कोऽपि दाता।''[15]

आशावादिता भाग्यवाद का ही दूसरा पहलू है। जो ईश्वर पर भरोसा करता है वह कर्म भी करता है और निराश नहीं होता। पिता के कठोर एवं संवेदनहीन व्यवहार के बाद भी रमा आशान्वित है कि पिता एक दिन जरुर उनके प्रति संवेदनशील हो जाएंगे। वह सोचती है– ''पाषाणेऽपि राजतेऽग्निः।''[16] दोक्षागुरुमहेश्वरानन्द शैलेन्द्र के पिता को कहते हैं– ''भवत्सुखं भवदधीनमेव! पितामह! अलमसहाय इव, विवश इव, हतभाग्यं इवात्मानं विनिन्द्य, नैराश्यसागरे वा निपात्य।''[17] श्रीकृष्ण भी भगवद्गीता में किंकर्त्तव्यविमूढ़ एवं हताश अर्जुन से कहते हैं ''नात्मानमवसादयेदिति''।[18]

भारतीय संस्कृति विश्व वरेण्य संस्कृति है। हर्षदेव के द्वारा सनातन वैदिक धर्म का विरोध करने पर तथा बौद्ध धर्म के पक्षधर होने पर बाणभट्ट उनको फटकार लगाते हुए कहते हैं– ''राजन! विद्वेक्षि तं शाश्वतं सनातनं वेदधर्मं यो विनिर्ममे विश्ववारां संस्कृतिम्।''[19]

'वसुधैव कुटम्बकम्' की संकल्पना से पूरित भारत भूमि की पवित्र धरा समस्त संसार को चरित्र की शिक्षा देने की पात्रता धारण करती है। वाग्दत्ता की नायिका जेनी कहती है– ''वसुधैव कुटुम्बकम् इति भारतराष्ट्रमेव समग्रविश्वमध्यापयत्। कृण्वन्तो विश्वमार्यमिति संङ्कल्पनाऽपि भारतवर्षस्यैव। स्वं स्व चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवा इत्येवं समुद्घोष्य भगवान् मनुरेव समस्तमपि संसारमामन्त्रितवान् भारतमागन्तुं स्वचरित्रं शिक्षितुञ्च।''[20] जेनी के मुख से कवि भारतीय संस्कृति को

सर्वश्रेष्ठ, वरेण्य, अनुकरणीय, सभ्य एवं शिक्षणीय प्रमाणित करते है।

'षोडश संस्कार' भारतीय संस्कृति की एक अद्भुत विशेषता है। गर्भाधान संस्कार से लेकर अन्तिम संस्कार तक मानव जीवन के आध्यात्मिक आधिभौतिक एवं आधिदैविक कल्याण के लिए, शारीरिक एवं मानसिक परिष्कार एवं पवित्रीकरण के लिए सोलह संस्कारों का विधान स्मृति आदि ग्रंथों में किया गया है। इन सोलह संस्कारों में पाणिग्रहण संस्कार अतिमहत्वपूर्ण संस्कार है, जिसे विवाह अथवा उद्वाह संस्कार भी कहते हैं। विवाह के आठ प्रकारों को संस्कृति में स्थान मिला है।

अर्द्धनारीश्वर की संकल्पना से पूरित भारतीय संस्कृति में कविवर की सम्पूर्ण आस्था है। दाम्पत्य जीवन की अत्यन्त सुन्दर परिकल्पना कविवर ने 'एकचक्रः' कथा में की है, दाम्पत्य जीवन एक गाड़ी के दो पहियों की तरह समगति, सामंजस्य, समझ, संतुलन से चलता है। वे दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं, दोनों की महत्ता समान है, दोनों की निष्ठा, कर्तव्य, समर्पण एवं प्रणयपरिपूर्णता समान रुप से अपेक्षित है। वे कहते हैं दाम्पत्यमधिकृत्य मदात्मचिन्तनं सर्वथा नूतनमेवासीत्। दाम्पत्यं नाम किम् ? मिथः प्रणयनिबद्धयोर्द्वयोः स्त्रीपुरुषयोर्नैष्ठिकस्संयोगः। निष्ठैव दाम्पत्यमूलम्। इयं निष्ठाऽप्युभयपक्षीयैव। तया पत्न्या निष्ठा पतिं प्रत्यपेक्षते तथैव पत्नीं प्रति पत्युरपि। एव हि दाम्पत्ये न कोऽपि कमपि कथमप्यनुगृह्णात्युपकरोति वा। आत्मकर्तव्यनिर्वहणे दाम्पत्योचितनिष्ठापरिपालने वा कीदृशः उपकारभावः? कीदृशी अधमर्णतोत्तमर्णता वा ?''[21]

स्पष्ट है कि कविवर दाम्पत्य जीवन की उस लोक प्रचलित रुढ़ परम्परा के पक्षधर नहीं है जिसमें स्त्री का आत्मसम्मान व अस्मिता धूलधूसरित हो जाती है तथा पति ही उसके सम्पूर्ण अस्तित्व का स्वामी एवं निरंकुश शासक होता है। कवि नारी को दोयम दर्जे पर नहीं, बल्कि परिवार की मेरुदण्ड के रुप में स्वीकार करते हैं।

विवाह समर्पण एवं स्नेहसार से सार्थकता को प्राप्त करता है। अन्यथा दा भिन्न–भिन्न परिवारों, संस्कारों एवं विचारधाराओं में सामंजस्य बिठाना अत्यन्त कठिन है। योग्य एवं अनुकूल वर एवं वधु का समागम लगभग असंभव है। इसी बात को संकेतित करते हुए वे कहते हैं– ''तुल्यगुणं वधूवरं विधाता क्व समानयति।''[22]

विवाह में स्त्री स्वातंत्र्य एवं अधिकार के पक्षधर होते हुए भी कविवर मर्यादा के अतिक्रमण के पक्ष में नहीं है, क्योंकि इससे सुरक्षा बाधित होती है और संरचनागत कारणों से स्त्री को ही इसके दुष्परिणाम सहने होते हैं। 'चंच्या' की नायिका 'मुन्नी बाई' अपनी पुत्री को जो शिक्षा देती है, उसे प्रो. पुष्पा दीक्षित ने कन्याओं के लिए उपनिषद् कहा है। वो कहती हैं–''प्रणयसूत्रे विच्छिन्ने सति नार्येव पराजयं पश्यति न पुरुषः। प्रकृत्या शरीरेण समाजदृष्टया च नारी परमनिर्बला वत्से! यतो हि उभयसाधारणे सत्यपि सम्भोगसुखे गर्भं नार्येव धारयति न पुरुषः। कुलटा व्यभिचारिणी वा सैव ख्याप्यते न पुरुषः। कलङ्कितं जीवनं सैव दुर्वहति न खलु पुरुषः। येनाचरणेन वराकी नारी निखिललोकतिरस्कारं भजते तेनैव पुरुषः प्रशाशस्यते छविल्लप्रकृतिरसाविति समुद्घोष्य।''[23] इस प्रकार दाम्पत्य जीवन की नूतन परिकल्पना करते हुए भी भारतीय सांस्कृतिक मर्यादाओं के भञ्जन को अभिराज राजेन्द्र मिश्र सर्वात्मना प्रतिषिद्ध करते हैं।

भारतीय संस्कृति में प्रतिपादित पुनर्विवाह व विधवा विवाह को भी कविवर ने संस्कृति सम्मत प्रतिपादित किया है। वे कहते हैं भारतीय इतिहास एवं संस्कृति में अनेकों उदाहरण विधवा विवाह, पुनर्विवाह, गन्धर्वविवाह आदि के मिलते हैं। परन्तु कालान्तर में भ्रामक व्याख्याओं एवं संकुचित मानसिकता के कारण ये परम्पराएं विस्मृत कर दी गई। इन परम्पराओं का अधुनातन समाज में अभिनन्दन क्यों नहीं होता, इसका उत्तर देते हुए वे कहते हैं– 'अज्ञानवशात्। रूढ़िवशात। बन्धो! यथाऽवरुद्धप्रवाहस्य तडागस्य जलमपेयं पूतिमच्च जायते तथैव परिच्युता विस्मृता वा परिपाटयोऽपि संजायन्तेऽधर्म पर्यायभूताः।''[24]

उदार हृदय महर्षियों तथा स्मृतिकारों ने मुक्त कण्ठ से विधवा विवाह अथवा पुनर्विवाह का समर्थन किया है। न केवल प्राचीन अपितु नवीन चिन्तकों कौटिल्य आदि ने भी पुनर्विवाह का समर्थन किया है। स्त्री से जुड़ी अपवित्र–पवित्र की भ्रामक अवधारणा को वे निर्मूल सिद्ध करते हैं। वे कहते हैं कि जिस प्रकार वर्षाजल के प्रवाह से अपेयजल से युक्त बावड़ी भी शुद्ध हो जाती है, उसी प्रकार प्रत्येक रजोदर्शन से नारी शुद्ध हो जाती है। ऐसा स्मृतियां उपदेश देती है। ब्रह्मर्षि वशिष्ठ कहते हैं कि '' न स्त्री दुष्यति जारेणेति'' और भी कहते हैं–

''स्वयं विप्रतिपन्ना वा यदि वा विप्रवासिता।
बलात्कारोपभुक्ता वा चोर हस्तगतापि वा।।
न त्याज्या दूषिता नारी नास्यास्त्यागो विधीयते।
पुष्पमासमुपासीत ऋतुकालेन शुध्यति।।''[25]

बलात्कार पीड़ित, अक्षतयोनिबाला एवं सद्यविवाहिता बाला यदि उसका पति मर जाए तो उसका पुनः विवाह किया जा सकता है। ये हमारे धर्मशास्त्र कहते हैं–

''बलाच्चेत् प्रह्रता कन्या मन्त्रैर्यदि न संस्कृता।
अन्यस्मै विधिना देया यथा कन्या तथैव सा।।
पाणिग्रहे मृते बाला केवलं मन्त्रसंस्कृता।
सा चेदक्षतयोनिः स्यात्पुनः संस्कारमर्हति।।''[26]

कविवर पूरे समाज को उपदेश देते हैं कि जो धर्मशास्त्र तिरोहित हो गए हैं, उनको अपने व्यवहार से आप्तजन पुनः प्रतिष्ठापित करे। समाज के आदर्शभूत मनुष्य वास्तविक सनातनधर्म की प्रतिष्ठापना करें। ऐसा करने पर अज्ञानग्रस्त भारतीय समाज हमारा ऋणी रहेगा। विधवा एवं एकाकी स्त्रियों का पुनरुद्धार होगा। वे समाज की मुख्य धारा में सम्मिलित होगी। 'पुनर्नवा' कथा में कृष्णा के पिता को दिया गया उपदेश वस्तुतः सम्पूर्ण समाज के कर्णधार बुद्धिजीवियों एवं मनीषियों के लिए उपदेश है। वे कहते हैं–''राजन्! तिरोहितमिदं धर्मशास्त्रं प्रकाशयतु भवान् प्रतिष्ठापयतु भवान् स्वव्यवहारेण। भवादृशा निष्कलङ्ककाञ्चनसदृक्षाः समाजादर्शभूता आप्तजना एव वास्तविक– सनातनधर्मं प्रतिष्ठापयितुं क्षमाः। अज्ञानग्रस्तोऽयं भारतीय समाजो, भविष्यति भवदधमर्णः। कियत्य एव दुःखदैन्यव्यथासागरनिमग्नाः कृष्णाः समुद्धृता भविष्यन्ति। वैधव्यमात्रं न भवति विधवायाः नियतिः। तन्नियतिस्तु तत्सौभाग्यम्।''[27]

पुरुषार्थ प्रशंसा एवं अकर्मण्यता निंदा भारतीय संस्कृति की एक अन्य विशेषता है। कविवर ने अपनी

कथाओं में पुरुषार्थ एवं कर्मवाद का समर्थन किया है। 'पुनर्नवा' में शैलेन्द्र के पिता से वे कहते हैं कि प्रचलित मार्ग से तो साधारण जन चलते हैं। क्योंकि वे अपने मार्ग का निर्माण करने में असमर्थ होते हैं। सिंह, सत्पुरुष एवं कविजन तो स्वयं अपने मार्ग का निर्माण करते हैं– ''राजन! चिराभ्यस्तेन क्षुण्णेन मार्गेण साधारणजनाः गच्छन्ति, ये स्वकीयं मार्गं निर्मातुमक्षमा अज्ञा वा। परन्तु केसरिणः कवयः सत्पुरुषाश्च न प्रवर्तन्तेऽभ्यस्तवर्त्मना! ते स्वकीयां सरणिं स्वयमेव विदधाति।''[28]

नूतन समाज के निर्माण का आश्रय महापुरुष ही होते हैं। जिस मार्ग से महापुरुष निकलते हैं, अन्य जन उसी का अनुसरण करते हैं– ''नूतन समाजसरिणं निर्मातु। भवन्निर्मितेयमेवसरणिरन्येषां कृतेऽनुकरणीया भविष्यति। यतोहि–

''यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जन।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तत।''

(श्रीमद्भगवद् गीता)[29]

सामान्य प्रचलित सामाजिक रुढ़ियों एवं मान्यताओं की परवाह न करते हुए प्रासंगिक एवं औचित्यपूर्ण जीवनमूल्यों की स्थापना की जानी चाहिए। इस तथ्य को प्रतिपादित करते हुए 'वाग्दत्ता' में उमाचरण शुक्ल कहते हैं– ''समाजस्तु नदीप्रवाहकल्पो, यो हि प्रावृषि मलीमसश्शीततों च स्वच्छतरोजायते।''[30]

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ. रूपनारायण त्रिपाठी, भारतीय संस्कृति के मूल तत्व, पृष्ठ–2।
2. डॉ. रूपनारायण त्रिपाठी, भारतीय संस्कृति के मूल तत्व, पृष्ठ–2।
3. प्रो. पुष्पादीक्षित, पुनर्नवा प्रस्तावना, पृष्ठ–3।
4. प्रो. पुष्पादीक्षित, पुनर्नवा प्रस्तावना, पृष्ठ–10।
5. प्रो. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–14।
6. प्रो. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–21।
7. प्रो. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, राङ्गडा, पृष्ठ–92।
8. प्रो. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, राङ्गडा, पृष्ठ–92।
9. प्रो. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, राङ्गडा, पृष्ठ–11।
10. प्रो. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, राङ्गडा, पृष्ठ–15।
11. प्रो. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, राङ्गडा, पृष्ठ–20।
12. प्रो. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, राङ्गडा, पृष्ठ–53।
13. प्रो. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, पुनर्नवा, पृष्ठ–128।
14. प्रो. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–35।
15. प्रो. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–45।
16. प्रो. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–39।
17. प्रो. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, पुनर्नवा, पृष्ठ–129।
18. प्रो. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, पुनर्नवा, पृष्ठ–130।
19. पो. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, पुनर्नवा, पृष्ठ–135।
20. प्रो. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, पुनर्नवा, पृष्ठ–70।
21. प्रो. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, राङ्गडा, पृष्ठ–59।
22. प्रो. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, इक्षुगन्धा, पृष्ठ–45।
23. प्रो. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, राङ्गडा, पृष्ठ–29।
24. प्रो. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, पुनर्नवा, पृष्ठ–128।
25. पो. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, पुनर्नवा, पृष्ठ–130।
26. प्रो. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, पुनर्नवा, पृष्ठ–131।
27. प्रो. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, पुनर्नवा, पृष्ठ–131।
28. प्रो. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, पुनर्नवा, पृष्ठ–130।
29. प्रो. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, पुनर्नवा, पृष्ठ–130।
30. प्रो. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, पुनर्नवा, पृष्ठ–71।